बच्चों में पढ़ना–लिखना सीखने और बुनियादी गणितीय क्षमताओं के विविध आयाम

चुनौतियाँ और सम्भावित समाधान

पत्रिका की संवाद शृंखला की यह छठवीं परिचर्चा है। संवाद का विषय है 'बुनियादी साक्षरता और बुनियादी, संख्यात्मक और अन्य गणितीय ज्ञान' शिक्षा के सन्दर्भ में यह विषय बहुत महत्त्व का है व प्रारम्भिक शिक्षा में बेहतरी के लिए किए जाने वाले प्रयासों के केन्द्र में है। इस अंक में हम इस संवाद का पहला भाग प्रकाशित कर रहें हैं। संवाद का दूसरा भाग अगले अंक में प्रकाशित करेंगे। सं.

रजनी : आप सभी का इस वेबिनार में स्वागत है। वेबिनार का विषय है– 'बुनियादी साक्षरता और बुनियादी, संख्यात्मक और अन्य गणितीय ज्ञान'। इस संवाद में सितारगंज प्राथमिक विद्यालय ऊधम सिंह नगर से संगीता, शासकीय प्राथमिक शाला बालमगोड़ा, रायगढ़, छत्तीसगढ़ के शिक्षक संतोष और प्राथमिक विद्यालय अभंगपुर, छत्तीसगढ़ से योगेश्वरी साहू हैं। अन्य साथी हैं– अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन धमतरी से अर्धेन्दु शेखर, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से ही अशोक प्रसाद जो श्रीनगर, पौड़ी से हैं। जगदंबा प्रसाद राजकीय इंटर कॉलेज नैचोली, चंबा से और अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के सिरोही स्थित स्कूल से पल्लवी चतुर्वेदी हैं। इस संवाद के सूत्रधार अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय से हृदयकान्त दीवान हैं। वे संवाद का सन्दर्भ रखेंगे।

हृदयकान्त दीवान : 'बुनियादी साक्षरता और बुनियादी, संख्यात्मक और अन्य गणितीय ज्ञान' का मसला बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यदि बच्चा शुरुआती कक्षाओं में पढ़ना-लिखना सीख ले और बुनियादी गणितीय क्षमताएँ हासिल कर ले तो वह सीखने में काफी आत्मनिर्भर हो जाता है। इस मसले को *एनईपी 2020* में भी रेखांकित किया गया है। हम अगर सोचें कि एक बच्चा जो स्कूल आने से पहले बहुत कुछ कर सकता है मतलब वो नया ज्ञान रच सकता है, नई चीज़ें समझ सकता है, वो किसी चीज़ की कल्पना कर सकता है जो उसके सामने नहीं है, नए सन्दर्भों में नए वाक्य बना सकता है, चीज़ों के बीच में सम्बन्ध ढूँढ़ सकता है, किसी चीज़ का कारण पहचान सकता है, सामाजिक रिश्तों को किस तरह से निभाना है, किस तरह से रिश्तों का इस्तेमाल करना है, यह सब भी वह सीख जाता है और वह हर समय इन सबका इस्तेमाल करता है। इसी तरह अगर गणित के सन्दर्भ में देखें तो वह गिन पाता है, मात्रा समझता है, समझता है कि ज़्यादा कौन-सा है, वज़न के हिसाब से भी, आकार में भी, और गिनती में भी। वो एक जगह से दूसरी जगह पहुँच सकता है, किस चीज़ को कहाँ रखना है समझ सकता है, किस चीज़ को कैसे घुमाकर निकालना है, आदि बहुत सारी चीज़ें वो कर सकता है।

बहुत से लोग यह भी कहते हैं कि गणितीय और भाषाई क्षमताएँ एक दूसरे को सुदृढ़ करती हैं, पोषित करती हैं और इसीलिए इन दोनों को एकत्रित रूप में हम लोगों को बच्चे के साथ बातचीत में शामिल करना चाहिए। हम यह जानते हैं कि एक छोटा बच्चा एक निश्चित विकास क्रम में तो लगभग बढ़ता है लेकिन उसका कोई

तिथिवार नियोजन नहीं होता। मतलब ऐसा नहीं है कि सभी बच्चे एक साल की उम्र में आकर बोलना शुरू कर दें या सभी बच्चे आठ महीने में चलना शुरू कर दें। हालाँकि सब बच्चे बोलना और चलना सीख जाते हैं। लेकिन उसमें एक तरह से विविधता होती है कि कौन-सी चीज़ कोई बच्चा पहले करता है और कितने समय में करता है। बच्चा जब स्कूल आता है तब उसके पास ये सब होता है। हमने यह भी देखा कि इन चीज़ों को हासिल करने की उसकी क्षमता में फ़र्क़ होता है और स्कूल आकर उसको इन सबको, औपचारिक रूप से गणित को, सीखना होता है। उसको पढ़ना, पढ़कर समझना और लिखना एवं लिखकर समझना सीखना होता है। हम लोगों का काफ़ी समय से यही प्रश्न रहा है कि स्कूल में ये कैसे हो पाएगा?

जगदंबा प्रसाद : मैं गणित का अध्यापक हूँ। मैंने बुनियादी संख्यात्मक और गणितीय समझ पर अपने टॉपिक को केन्द्रित किया है। दरअसल हम गणित के क्षेत्र में किसी भी छोटे बच्चे को, चाहे वो अंकों से सम्बन्धित हो या दक्षताओं से पहले हो या वो जोड़ना, घटाना या तुलना करना हो, इन सारी चीज़ों के बारे में बताते हैं तो हमारे सामने यह सबसे बड़ी समस्या आती है कि शिक्षा से सम्बन्धित जितने भी हितधारक (stakeholders) हैं, चाहे वो माता-पिता हों, बच्चे या अध्यापक हों, वो ऐसा मानते हैं कि गणित कठिन है। शायद यह सिस्टम भी ऐसा रहा है। उस चीज़ के लिए आधारभूत समझ, चाहे वो संख्यात्मक हो, हिसाब (calculation) के बारे में, अथवा जोड़ या घटाने के बारे में हो, उस चीज़ के लिए हमको चारों ओर एक ऐसा वातावरण तैयार करना चाहिए जो कि स्वाभाविक हो, जहाँ पर बच्चा अपनी बात आसानी से कह सके और उस वातावरण से ख़ुद ही सीख सके। हम देखते हैं कि अर्जन (acquisition) शब्द भाषा से ज़्यादा सम्बन्धित है, लेकिन जैसे कि अभी सर ने कहा था कि ये अलगाव (isolation) में नहीं होता है, ये भाषा के साथ जुड़ा होता है। जब बच्चे को हम कोई निर्देशित संरक्षक (guided mentor) या टीचर के रूप में किसी भी बात को समझाने की कोशिश करते हैं वहाँ हम बच्चे का अधिगम करवाएँ वो अर्जन के साथ होना चाहिए। मेरा कहने का अर्थ यह है कि बच्चे के चारों ओर हम ऐसा वातावरण तैयार करें कि उसको स्वाभाविक अनुभव हो, कहीं से भी उसको गणित समझने या समझाने में, अपनी बात को रखने, उसको अभिव्यक्त करने या उस वातावरण से सीखने में बिलकुल परेशानी न हो। जब गणित की आधारभूत संक्रियाओं, चाहे वो जोड़ की हो, लिखने या घटाने की हो या किसी भी गणितीय ऑपरेशन की बात हो तो हम उसके चारों ओर सिखाने का एक ऐसा वातावरण तैयार करें कि बच्चा वहाँ से ख़ुद-ब-ख़ुद सीख सके, वातावरण से सहभागिता (interact) कर सके और इसके लिए टीचर के तौर पर मेरा ये उत्तरदायित्व बनता है कि हमें बच्चे की अभिवृत्ति (attitude), उसके संज्ञानात्मक स्तर के आधार पर सबकुछ तय करना चाहिए और जैसा कि अभी सर ने कहा भी था कि बच्चा बहुत सारी चीज़ें जानता भी है, लेकिन हम लोगों को यह देखना है कि हमें बच्चे के किस ज्ञानक्षेत्र (domain) को आगे लाना

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

है? गणित कोई लिखने की ही तकनीक नहीं है, यह मौखिक में भी आती है, निर्माण (construction) में भी आती है, क्रियाओं (activities), चित्रकारी में भी आती है। हमें यह भी देखना है कि बच्चा किन क्षेत्रों में ज़्यादा दक्षताओं को रखता है और गणित के माध्यम से हमें इनमें से किन क्षेत्रों को आगे लाना चाहिए। एक शिक्षक के तौर पर मैं सोचता

हूँ कि गणित में एक और समस्या ये आती है कि हम बच्चे को पहले अमूर्त बात बताते हैं। हम ये पहले बताते हैं कि पहले 1 लिखो, फिर 2 लिखो, फिर 3 लिखो और फिर उसको ठोस रूप में लाने की कोशिश करते हैं। जैसे-जैसे शिक्षा में सुधार हुआ है और हम लोगों ने बातों को समझना शुरू किया है तो अब काफ़ी लोगों ने पहले ठोस रूप और बाद में अमूर्त रूप की तरफ़ ले जाने का प्रयास करना शुरू कर दिया है।

यह भी कि गणित शब्द का प्रयोग अलगाव में बिलकुल नहीं होगा, वो हिन्दी के साथ भी सम्बन्धित होगा, भाषा के साथ भी, भौतिकी (Physics) एवं रसायन विज्ञान (Chemistry) के साथ भी और उस बच्चे के संज्ञानात्मक स्तर और पूर्व ज्ञान के हिसाब से भी होगा।

मेरा अनुभव है कि अमूर्त और ठोस दोनों एक साथ चलना चाहिए। यानी ऐसा नहीं कि पहले आप ठोस के साथ अनुभव ही देते रहें और फिर बाद में अमूर्त पर आएँ। हम दोनों को एक साथ लेकर सिखाने की कोशिश करें, यह केवल संख्यात्मक ज्ञान में ही नहीं, जोड़ में भी ऐसा हो सकता है, घटाने और गुणा में भी ऐसा ही कर सकते हैं। जैसे एक चित्र में बच्चे को 1 लिखना है, क्योंकि उसमें 1 पेड़ है लेकिन बच्चा अपनी समझ के अनुसार, अपने संज्ञानात्मक स्तर के अनुसार 3 भी लिख सकता है क्योंकि उसे पेड़ की 3 डालियाँ दिखाई दे रही हैं। हमें बच्चे के सामने ऐसी आकृतियाँ प्रस्तुत करने से बचना चाहिए। हमें बच्चे के स्तर पर जाकर सोचना पड़ेगा। एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब हम वातावरण की बात कर रहे हैं तो स्वाभाविक तौर पर उसकी सीखने की प्रक्रिया (learning) करानी होगी, हमें गणित की भाषा को ऐसा करना पड़ेगा कि बच्चा ख़ुद-ब-ख़ुद सीख सके। वातावरण का अर्थ सिर्फ़ चार दीवारों के अन्दर से नहीं है बल्कि उसका अर्थ है कि हम उसको कक्षा से बाहर भी ले जाएँ। हम उसको सड़क पर, खेत में, फ़ील्ड पर, कहीं पर भी ले जा सकते हैं। बच्चे अपनी सभी इन्द्रियों को, ख़ासकर अपनी आँख भी सक्रिय रखें, और जुबान भी सक्रिय रहे और उनके हाथ भी। मतलब लिखने की प्रक्रिया जो कि हम लिखने की तकनीक से कर सकते हैं, उन सबको सामूहिक रूप से एकीकृत कर सकें। बच्चा सुन क्या रहा है, सुनने के अनुसार प्रतिक्रिया क्या दे रहा है, बोल क्या रहा है और लिख क्या रहा है, इन सारी चीज़ों को वो एकीकृत कर काम कर सके। हमारे जो टूल हों, एक तो वो कच्ची सामग्री (raw material) से बने हों, स्थानीय (local) हों, कम लागत वाले और आकर्षक हों, ताकि उम्र के हिसाब से वो बच्चे को अपनी ओर खींच सकें। रंगीन हों, गत्यात्मक हों, चलते-फिरते और इंटरैक्टिव हों, वो टूल ख़ुद-ब-ख़ुद बच्चे को कुछ समझा सकें और बच्चा उनसे कुछ बात कर सके। ये टूल स्थानीयता पर आधारित होने चाहिए। ऐसा न हो कि मैं गढ़वाल में पढ़ा रहा हूँ और उस टूल के लिए मुझे सहारनपुर या दिल्ली जाना पड़े। इन सारी बातों को ध्यान में रखते हुए हमें बच्चे के साथ गणितीय समझ को विकसित करने की पहल करनी चाहिए।

वातावरण का अर्थ सिर्फ़ चार दीवारों के अन्दर से नहीं है बल्कि उसका अर्थ है कि हम बच्चे को कक्षा से बाहर भी ले जाएँ। हम उसको सड़क पर, खेत में, फ़ील्ड पर, कहीं पर भी ले जा सकते हैं। बच्चे अपनी सभी इन्द्रियों को, ख़ासकर अपनी आँख भी सक्रिय रखें, और जुबान भी सक्रिय रहे और उनके हाथ भी।

हृदयकान्त दीवान : आपने दो-तीन सवाल रखे हैं। पहला सवाल गणित की मुश्किल के बारे में है। हमने पहले भी बात की थी कि गणित में स्वाभाविक तौर पर बच्चा बहुत कुछ सीख लेता है, फिर भी ऐसा क्यों महसूस होता है कि गणित मुश्किल है। दूसरा, कुछ ऐसी चीज़ों की ज़रूरत होती है जो कि सीखने को प्रोत्साहित करें। उसके बारे में भी आपने कुछ बातें कही हैं। तीसरा, आपने कहा है कि एक सन्दर्भ और

ठोस चीज़ें होनी चाहिए जिनके आधार पर हम धीरे-धीरे अमूर्तता की तरफ़ बढ़ें।

संगीता : जैसी कि अभी बात हुई कि बच्चे बहुत कुछ सीखकर हमारे पास आते हैं, उनमें बहुत कुछ समझ होती है। जब बच्चा छोटा होता है तो वह बहुत कुछ बोलना जानता है। वह अपनी टूटी-फूटी भाषा में बहुत सारी बातें बोलता है, कहता है और वो जो कुछ भी कहता है ऐसा नहीं है कि निरर्थक हो, उसमें एक सन्दर्भ होता है, अर्थ होता है। लेकिन फिर भी जब वह विद्यालय आता है तो हम उसको टुकड़ों में सिखाना और पढ़ाना शुरू करते हैं। हम रटने को ही सिखाना मानते थे, अक्षर ज्ञान मात्रा तक ही सीमित था। लेकिन अब उसमें और भी बहुत चीज़ें शामिल हैं। जब वो पढ़ने जाए तो यह नहीं है कि सिर्फ़ उसको अक्षर ज्ञान हो गया तो उसका सीखना हो गया। पढ़ना पढ़कर सीखा जाता है। इसलिए उसको पढ़ने के लिए बहुत सारी किताबों की भी आवश्यकता होती है।

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

जब हम पढ़ने की बात करते हैं तो पढ़ने के मायने क्या हैं, जैसे– अंक की सूचनाओं को पढ़ पाना, उनको समझना, अर्थ गढ़ना, विचार बुनना, अपने विचार जोड़ना, ऐसी बहुत सारी बातें इसमें समाहित हैं। इस तरह से पढ़ना एक रचनात्मक प्रक्रिया है। जब हम उसको सिखाने की तरफ़ आगे बढ़ते हैं तो यह होना चाहिए, और मैं यह करती भी हूँ कि मैं उसकी पढ़ने में रुचि जगा सकूँ क्योंकि जब उसकी पढ़ने में रुचि जागेगी, वो आगे कुछ सीखने के लिए प्रेरित होगा। जब उसमें रुचि जागृत होगी तो वो किसी भी चीज़ को पढ़ सकेगा, समझ सकेगा, उसका अर्थ गढ़ पाएगा। और सबसे बड़ी बात, हमने देखा कि शुरुआत में जब बच्चा विद्यालय आता है तो अपनी भाषा में ही बोलता है, लेकिन धीरे-धीरे हम उसको विद्यालय के नियम और क़ायदे-क़ानून में बाँधकर सिखाना शुरू करते हैं। जिस भाषा का हम विद्यालय में उपयोग करते हैं वो एक मानक भाषा होती है और बच्चे के पास अपनी एक भाषा होती है। मानक भाषा और बच्चे की मातृभाषा में फ़र्क़ होने की वजह से बच्चे को अर्थ ग्रहण में दिक़्क़त होती है। जब अर्थ ग्रहण नहीं होता और समझ नहीं बनती है, तो इससे उसमें एक अरुचि पैदा हो जाती है। इसलिए सबसे पहले तो उसकी भाषा को कक्षा में स्थान दिया जाना चाहिए और उसके अनुभवों को वहाँ पर शामिल किया जाना चाहिए। उसकी अभिव्यक्ति को कक्षा में लाया जाए जिससे वह अपने अनुभवों को रख सके। जब उसकी भाषा एवं उसके अनुभवों को कक्षा में लाया जाएगा और उसको जब अवसर मिलेगा तो उसकी सीखने के प्रति रुचि भी बनेगी और सीखना भी पुख़्ता तरीक़े से सीख पाएगा।

कई लोगों ने कहा है और मेरा भी मानना है कि पढ़ना पढ़कर सीखा जाता है। पढ़ना केवल एक किताब या पाठ्यपुस्तक से नहीं सीखा जा सकता, बल्कि इसके लिए बहुत सारे बाल साहित्य की ज़रूरत होती है। एक बच्चा जब बाल साहित्य पढ़ता है तो वह कुछ अर्थ गढ़ता है और उसमें वह अपने-आप को पाता है। वह ख़ुद को उसके साथ जोड़ता है और इस प्रक्रिया में वह भाषा सीखने की तरफ़ अग्रसर होता है। इस क्रम में वो बहुत सारी अभिव्यक्ति, चाहे मौखिक हो (मौखिक रूप से तो वो शुरू से देता ही रहता है) या लिखित, व्यक्त करता है। पहले सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना को हम क्रमबद्ध

तरीक़े से देखते थे। लेकिन जब हम सन्दर्भ की बात करते हैं और सन्दर्भ के द्वारा बच्चों के सीखने की बात करते हैं तो वो एक स्वाभाविक गति और रुचि से होता है। इसमें हम पढ़ने और लिखने को अलग-अलग नहीं देखते हैं। उसका सुनना, पढ़ना और बोलना सब एक साथ चलता है। जब उसको बहुत सारी किताबें मिलती हैं तो वो उनमें रुचि लेना शुरू करता है और धीरे-धीरे वह पढ़ना सीखता है। इस तरह से वह एक अच्छा पाठक बनने की ओर अग्रसर होता है। जब बुनियादी साक्षरता की बात करते हैं तो गणित की भी बात की जाती रही है। शिक्षा का एक उद्देश्य है, विषयगत दीवार को तोड़ना। हम भाषा को केवल हिन्दी के रूप में रखकर नहीं देख सकते, उसमें अन्य विषयों का जुड़ाव भी होता है। चाहे गणित हो, पर्यावरण विज्ञान, विज्ञान, या सामाजिक विज्ञान हो, बिना भाषा सीखे उन सब विषयों को भी सीखना दुष्कर होगा।

इसलिए बच्चों की एक भाषा में पुख़्ता समझ होने से तथा उस भाषा में समझ और पढ़ सकने के कौशलों को अर्जित करने से वह अन्य भाषाओं को भी सीखने में सक्षम होता है। मान लीजिए कि जब हम किसी भी कहानी पर चर्चा कर रहे हैं– चाहे वह 'मिठाई' या 'फूली रोटी' या 'गुलगुले' है– तो उसमें कहीं-न-कहीं गणित भी शामिल होता है और उसमें उसका आसपास का परिवेश भी शामिल है। इसी तरह, अगर हम पेड़ से सम्बन्धित कहानी की बात कर रहे हैं तो उसमें भी बच्चा उस कहानी को तो पढ़ ही रहा है, साथ ही वह अपने आसपास के पेड़ों से और अपने आसपास के वातावरण से भी ख़ुद को जोड़ पाता है। पहले की पढ़ाने की प्रक्रिया के अनुसार हम पाठ्यपुस्तक के 'झूला' पाठ को पढ़ाकर या सुनाकर उसके अभ्यास की तरफ़ बढ़ जाएँगे तो उसमें बच्चे की रुचि नहीं होगी। वह उसको उस तरह से नहीं समझ पाएगा जिस तरह से वह अपने अनुभवों को जोड़कर समझ पाएगा। जैसे– झूले के विषय में अगर बच्चों के अनुभवों को कक्षा में लाया जाए तो वे उसको अधिक अच्छे-से समझ पाएँगे। बच्चे के अनुभवों को जब कक्षा में लाया जाता है तो बच्चा अपने-आप को सम्मानित भी महसूस करता है और दोगुने उत्साह के साथ सीखने की ओर अग्रसर होता है। ऐसी ही मातृभाषा की बात है कि हम बच्चे को पढ़ा रहे हैं और कह रहे हैं कि ये मानक भाषा है और मानक भाषा को समझाने के लिए हमें शब्दार्थ का सहारा लेना पड़ता है जिसमें उसको कठिनाई होती है। लेकिन यदि मान लीजिए कि हम 'तीन साथी' कहानी पढ़ा रहे हैं और उसमें वाक्य है कि 'हाथी डाली झुकाता और बकरी पत्ते खाती थी', लेकिन अगर बच्चा उसको यह पढ़ रहा है कि 'हाथी डाली लचाता और बकरी पत्ते खाती' तो 'झुकाता' की जगह 'लचाता' पढ़ने से उसका अर्थ कहीं बाधित नहीं हो रहा है। इसी तरह 'छुप्पम-छुप्पाई' की जगह 'लुका-छिपी' तथा 'पलटना' की जगह 'लौटना' कहने से कहीं भी उसका अर्थ नहीं बदल रहा है। इस तरह से उनके अनुभवों को, उनकी भाषा को अगर हम कक्षा में शामिल करके उनको सिखाते हैं तो उनका सीखना और अधिक सुदृढ़ होता है।

> पढ़ने की प्रक्रिया में अनुमान लगाना एक प्रमुख अंग है। अनुमान लगाना पढ़ने की कुंजी है। बच्चे को अगर अक्षर पढ़ना नहीं भी आ रहा होता है तो अनुमान के सहारे वो आगे की कहानी पढ़ता जाता है और इस तरह अनुमान के सहारे पढ़ते-पढ़ते वह पढ़ना सीख जाता है।

दूसरी बात यह है कि पढ़ने की प्रक्रिया में अनुमान लगाना एक प्रमुख अंग है। अनुमान लगाना पढ़ने की कुंजी है। बच्चे को अगर अक्षर पढ़ना नहीं भी आ रहा होता है तो अनुमान के सहारे वो आगे की कहानी पढ़ता जाता है और इस तरह अनुमान के सहारे पढ़ते-पढ़ते वह पढ़ना

सीख जाता है। इसी तरह से और भी कुछ चीज़ें हैं, जैसे– अगर उसमें पढ़ने की उत्सुकता जगानी है, रुचि पैदा करनी है, उसको पाठक बनने की ओर अग्रसर करना है, अभिव्यक्ति का मौक़ा देना है तो इन सबके लिए एक समृद्ध और प्रिंट रिच वातावरण चाहिए जिसके लिए पुस्तकालय या पढ़ने के कोने की हम बात करते हैं, जो बच्चों को इस तरह के अवसर देने में या पढ़ना सीखने में सरलता प्रदान करते हैं। बच्चे भी उन पुस्तकों को पढ़ते हुए, समझते हुए, कल्पनाएँ या तर्क करते हुए पढ़ने की ओर अग्रसर होते हैं। जब हम चाहते हैं कि बच्चे में प्रारम्भिक अवस्था या कक्षा 1, 2 से ही पढ़ने में रुचि उत्पन्न हो, इसके लिए शिक्षक को भी जागरूक होना आवश्यक है कि वह एक योजना के तहत एक सैद्धान्तिक समझ बनाते हुए कार्य करे।

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

हृदयकान्त दीवान : कुछ बातें बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। जैसा कि आपने कहा कि सीखना टुकड़ों में नहीं होना चाहिए। सीखना एक व्यापक प्रक्रिया है। यह मात्र अक्षर पहचान नहीं है। दूसरी बात आपने कही कि कक्षा में जो नियमबद्धता है मानक भाषा के इस्तेमाल की, उसको थोड़ा ढीला करना चाहिए। बच्चे की भाषा के लिए कक्षा में जगह होनी चाहिए। यह भी कि पढ़ने में धीरे-धीरे अनुमान लगाने से बच्चा पढ़ना शुरू करता है तो उसके लिए एक सन्दर्भ और प्रिंट रिच वातावरण चाहिए, साथ ही एक ऐसा माहौल कक्षा में मिले जिसमें बच्चे बार-बार अनुमान लगाते-लगाते पढ़ने का अभ्यास कर सकें, बिना पूर्णतः सही के आग्रह के। हम पढ़ना, लिखना, सुनना, बोलना इन सबको अलग-अलग देखते हैं, इनको ऐसे नहीं देखकर एकत्रित रूप में देखना चाहिए। चूँकि भाषा हमारे सम्पूर्ण जीवन का, हमारी सम्पूर्णता का हिस्सा है और इसलिए उसको समग्रता से देखना बहुत ज़रूरी है।

योगेश्वरी : पहली कक्षा से बच्चे हमारे स्कूल में आते हैं और उनको भाषा की जानकारी होती है, चाहे वह अपनी ही भाषा क्यों न बोलें। जैसे अगर बच्चा छत्तीसगढ़ का है तो वो छत्तीसगढ़ी बोलेगा। उनको बहुत सारा ज्ञान होता है, वो निरर्थक बातें नहीं करते हैं। उनको बुनियादी समझ भी होती है। छोटे-छोटे शब्दों की जानकारी उनको होती है और अपने अनुभवों को वे जोड़ते हैं। जो बच्चा प्री नर्सरी करके आता है मतलब कि वो आँगनवाड़ी से बहुत कुछ सीखकर आता है चाहे वह गणित में हो, हिन्दी में हो या छत्तीसगढ़ी भाषा हो। हम उनको कक्षा में कविता सुनाने को कहते हैं तो वो अपनी भाषा में सुनाता है। अगर हिचकिचाहट है तो वो थोड़ा पीछे हो जाता है। बुनियादी साक्षरता जैसे कि सात साल का बच्चा जो स्कूल आता है, वो मोबाइल चलाना जानता है। अगर गूगल में उसे अपनी कोई बात रखनी होती है तो वो गूगल में सिर्फ़ एक बार बोलता है। वो जानता है कि अगर माइक में हम बोलेंगे तो वो टाइप करेगा और खोजेगा। यहाँ वो जान रहा है कि हम जो बोलेंगे उसकी खोज होगी और उसको हम पढ़ सकते हैं, लिख सकते हैं। दूसरा, बच्चे कार्टून देखना ज़्यादा पसन्द करते हैं। अगर हम स्कूल में उनसे पूछते हैं कि कौन-सा कार्टून चरित्र उनको पसन्द है और उसका कोई डायलॉग बोलो तो वह उसको ध्यान में रखते हुए बोलता है। अगर वो टीवी देख रहा है और स्कूल में आकर उसको बता रहा है तो उसको भाषा का ज्ञान है। चाहे वह हिन्दी हो या छत्तीसगढ़ी। पढ़ना एक रचनात्मक प्रक्रिया है, ये हम सब जानते ही हैं। साथ ही ऐसे कई और उदाहरण

हैं जो हम स्कूल में काम में लेते हैं। जैसे कि हम अगर स्कूल में कोई सांस्कृतिक कार्यक्रम या वार्षिकोत्सव आयोजित करते हैं और अगर हम उनको बोलते हैं कि कोई भी डांस वहाँ करें तो बच्चे पहले सीखकर आते हैं और फिर उसको दिखाते हैं। छत्तीसगढ़ी भाषा को वो समझते हैं इसलिए वो उसपर ज़ोर देते हैं।

इसी तरह गणित में मूर्त से अमूर्त की तरफ़ चलने पर ज़ोर देना चाहिए न कि अमूर्त से मूर्त की ओर। उदाहरणत:, अगर बच्चे को गणित का ज्ञान कराना है तो पहले उनको संख्या के बारे में नहीं बताते, ठोस वस्तुओं का अनुभव कराते हैं। जैसे, उनको पहाड़े रटाते नहीं हैं, हम पहाड़े बनाने पर ज़ोर देते हैं। यही प्रक्रिया हम पहले ठोस वस्तुओं के साथ करेंगे फिर अंकों के साथ। साथ ही अगर बच्चों में रुपए की समझ बतानी है तो इससे सम्बन्धित ज्ञान को व्यवहारिक जीवन से जोड़ना होगा। रुपए को समझाने के लिए हमें उन्हें रुपया या सिक्का दिखाना है। साथ ही बाज़ार का खेल खेलकर या घर का अभिनय करके भी हम उनके गणित के ज्ञान के लिए रुचि उत्पन्न करते हैं। दूसरा अगर गणित सिखाना है तो हमें इसे निरन्तर अभ्यास में लाना है। जैसे कि घर में रोटी बनाई गई हैं तो कितनी रोटी फूली हैं और कितनी नहीं। इसमें आपको जोड़ने और घटाने का हिसाब करना है, इससे कुछ हद तक जोड़ने और घटाने का हिसाब उनको समझ में आ जाता है। इसके साथ ही हमें भाषा को भी कक्षा में स्थान देना होगा। अगर बच्चा छत्तीसगढ़ी भाषा के सहारे अपने मन की बात कहना चाहता है तो वो कह सकता है। हम बच्चों को उनके अनुभवों से जोड़ने की कोशिश करते हैं और उनकी कल्पना एवं तर्कशक्ति पर भी हम ज़ोर देते हैं, साथ ही वातावरण से सम्बन्ध बनाकर देखते हैं।

गणित में मूर्त से अमूर्त की तरफ़ चलने पर ज़ोर देना चाहिए न कि अमूर्त से मूर्त की ओर। उदाहरणतः, अगर बच्चे को गणित का ज्ञान कराना है तो पहले उनको संख्या के बारे में नहीं बताते, ठोस वस्तुओं का अनुभव कराते हैं। जैसे, उनको पहाड़े रटाते नहीं हैं, हम पहाड़े बनाने पर ज़ोर देते हैं। यही प्रक्रिया हम पहले ठोस वस्तुओं के साथ करेंगे फिर अंकों के साथ।

हृदयकान्त दीवान : योगेश्वरीजी, आपने कल्पना और तर्कशक्ति के मौक़े देने की बात की, उसके कुछ उदाहरण दें।

योगेश्वरी : जैसे कोई बच्चा पहली कक्षा में आया और उसमें हिचकिचाहट है तो उससे दोस्ती करने के लिए हम पहले उससे घर की बात करेंगे। जैसे, आपकी मम्मी और पापा क्या करते हैं? इस तरह, धीरे-धीरे बच्चे को उस टॉपिक की ओर ले जाने का प्रयास करेंगे जिसपर चर्चा करनी है। उदाहरण के लिए, उनसे पूछा जा सकता है कि अगर तुम्हें चाँद पर भेज दिया जाए तो तुम क्या करोगे? इस प्रक्रिया में अपनी कल्पना-शक्ति का प्रयोग करते हुए वो बता सकता है कि चाँद सफ़ेद-सा दिखता है या बहुत बड़ा-सा है। इस तरह वो चाँद के बारे में बताना शुरू करेगा। जैसा कि पहले मैंने कहा, बच्चों की बातें निरर्थक नहीं होती हैं। यह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम उनको, उनकी भाषा को किस तरह से समझ रहे हैं, चाहे वह उनके लिखने की भाषा हो या पढ़ने की। प्राथमिक स्तर के बच्चे एकदम से लिखना नहीं जानते हैं, लेकिन उन्हें रंगों की और बहुत सारी चीज़ों की पहचान होती है। इन बच्चों में थोड़ी हिचकिचाहट होती है क्योंकि वो आँगनवाड़ी या केजी या नर्सरी से आते हैं। स्कूल का वातावरण उनके लिए नया होता है। सारे बच्चों को एक साथ जोड़ना पड़ता है और उनको एक साथ मौक़ा देना पड़ता है कि वो सामने आएँ और अपनी बातों को रखें।

हृदयकान्त दीवान : पहली महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बच्चे सार्थक बात करते हैं और उस सार्थक बात को समझने की ज़िम्मेदारी हमारी है। एक बात संगीताजी ने भी कही थी कि बच्चे की भाषा को जगह देनी चाहिए और उसे समझने की कोशिश करनी चाहिए। दूसरी

बात आपने यह कही कि बच्चे के अनुभव जो वो अभिव्यक्त करते हैं उनको लिखने से हम बच्चों को यह महसूस करवा पाते हैं कि उनकी बात महत्त्वपूर्ण है और उनमें आत्मविश्वास भी आता है और उनकी ये अभिव्यक्तियाँ पढ़ना शुरू करने के लिए टेक्स्ट बन सकती हैं। यहाँ एक बात और मैं जोड़ रहा हूँ जो संगीताजी ने कही कि प्रिंट रिच वातावरण होना चाहिए, तो प्रिंट रिच वातावरण सिर्फ़ किताबों से नहीं, बल्कि उस सामग्री से भी बनता है जो बच्चों ने बातचीत में रखी, बोर्ड पर लिखकर रखा और फिर उसको लिखने का प्रयास किया। तीसरी बात आपने यह कही कि कोई भी चीज़ बच्चे को सिखानी हो, चाहे वह गणित ही हो क्योंकि गणित में अभ्यास बहुत ज़रूरी होता है, भाषा का अभ्यास स्वाभाविक रूप से मिल जाता है। लेकिन गणित में अभ्यास बनाने की ज़रूरत होती है तो हम छोटे-छोटे खेल और ऐसे सन्दर्भ विकसित कर सकते हैं, जैसे– बाज़ार जमाना, घर का अभिनय करना जिसमें बच्चों को गणित का अभ्यास करने का मौक़ा मिले। कुल मिलाकर अभ्यास इस प्रकार के हों जिनमें बच्चे की रुचि हो, जो बातचीत करें वो भी उस बारे में करें जिसमें बच्चे की रुचि हो और सवाल भी ऐसे हों जिनमें एक प्रकार का खुलापन हो जिसमें बच्चे को कल्पना करने का मौक़ा हो। वो कल्पना किस आधार पर करता है उसपर बाद में बातचीत करेंगे, लेकिन एक कल्पना का उसको मौक़ा होना चाहिए और उस कल्पना में आप ये पूछ भी सकते हैं कि ये आपने किस आधार पर कहा। आप कह रही हैं कि कक्षा में कल्पना और तर्क दोनों के लिए जगह होनी चाहिए क्योंकि उसी से फिर भाषा और समझ का विकास होता है।

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

संतोष : हम सामान्यत: बच्चों को ख़ाली स्लेट या माटी का लौंदा के रूप में चिह्नित करते हैं। बच्चा एक साफ़-सुथरी भाषा और हज़ारों शब्द लेकर हमारे विद्यालय में आता है। वह न केवल उन शब्दों को जानता है, बल्कि सन्दर्भों के साथ उनका प्रयोग भी करना जानता है। मैंने अपनी शाला में बच्चों से बात की और परिवार में जाकर उनसे मिला तो कुछ बातें मेरे सामने आईं जो मैं आप लोगों के सामने रखूँगा। एक बच्चा जब परिवार, मित्र या शिक्षक से संवाद करता है तो वह संवाद एक तरह से उसकी बुनियादी साक्षरता को प्रदर्शित करता है। इस क्रम में वह व्याकरण व तर्क के साथ भी बात करता है। वो अपने स्वयं के अनुभव को भी साझा करता है। जैसे वह कह सकता है कि मेरे परिवार में मेरी माँ मेरा सबसे ज़्यादा ख़्याल रखती हैं या स्कूल में मेरे ये शिक्षक मुझे बहुत पसन्द करते हैं। वह बातों को सुनते हैं और ग़ुस्सा नहीं करते हैं। वह साक्ष्य के साथ अपना तर्क भी देता है। इस तरह से यह जानकारी होती है कि बच्चा सीखने की ओर अग्रसर हो रहा है। हमें अपनी कक्षा में उनकी बातों को महत्त्व और उचित स्थान देना चाहिए।

हम लोग कहते हैं कि विषय से सम्बन्धित जो बातें हैं यदि उनको हम मानक भाषा में करें तो बच्चा ज़्यादा सीखेगा, और बच्चों की भाषा को हम उपेक्षित दृष्टि से देखते हैं। इस वजह से बच्चे को एक झिझक महसूस होती है और डर लगता है कि मैं जिस भाषा में उत्तर दूँगा वह शायद ग़लत होगा। यदि बच्चों को मातृभाषा में बोलने के लिए प्रोत्साहन मिले तो यह डर हट जाता है और बच्चों की झिझक ख़त्म होने लगती है।

शुरुआती कक्षाओं में सहसंज्ञानात्मक व नैतिक विकास के बारे में सोचना चाहिए। जब क्लासरूम में बच्चों से कोई प्रश्न पूछा जाता है तो बच्चे 'मैं बताऊँगा', 'मैं बताऊँगा' करके हाथ खड़ा करते हैं। लेकिन जैसे हम बोलते हैं कि 'बच्चे आपकी बारी है आप बताओ' तो वह अपनी बारी आने पर बात करना सीखते हैं। इसी तरह एक बार मैदान में हम लोग कुछ बीज बो रहे थे, वृक्षों को पाल रहे थे तो एक बच्चा बोला कि इस वृक्ष की मम्मी नहीं हैं क्या? इस तरह से प्रश्न में एक सहानुभूति की भावना जागृत होती है। इससे यह पता चलता है कि भय, क्रोध और ममता जैसी भावनाओं पर भी बात होती रहनी चाहिए क्योंकि बच्चों में सहसंज्ञानात्मक क्षेत्र में भी विकास होता रहता है।

उनको स्थानीय खेलों के कुछ नियम बनाकर और लिखकर हमें दिखाने को कहना चाहिए। पहली और दूसरी कक्षा में बच्चों ने अपने मन से कुछ खेलों के नियम बनाए थे। खेल किस प्रकार से खेला जाता है, इसमें कितने बच्चे खेलते हैं और उसमें जो शब्दावली थी वो भी उन्होंने तय की थी। दूसरी कक्षा के बच्चों ने उसको लिखित स्वरूप में दिखाया था और पहली कक्षा के साथ उन्होंने यह खेल खेला था। इस तरह से उनके परिवेश में जो भाषा रहती है, केवल हमारे पाठ्यक्रम की ही भाषा नहीं रहती है। खेल सम्बन्धी ज्ञान के नियम बनाने और खेलने से उनमें केवल अनुशासन ही नहीं बढ़ता, बल्कि एक तरह से नैतिकता भी आती है और सहयोग की भावना का भी विकास होता है।

शुरुआती कक्षाओं में सहसंज्ञानात्मक व नैतिक विकास के बारे में सोचना चाहिए। जब क्लासरूम में बच्चों से कोई प्रश्न पूछा जाता है तो बच्चे 'मैं बताऊँगा', 'मैं बताऊँगा' करके हाथ खड़ा करते हैं। लेकिन जैसे हम बोलते हैं कि 'बच्चे आपकी बारी है आप बताओ' तो वह अपनी बारी आने पर बात करना सीखते हैं।

बच्चों को तरह-तरह का ज्ञान पहले से ही होता है, वे बहुत जिज्ञासु होते हैं। बार-बार प्रश्न करना उनकी जिज्ञासा को ही प्रदर्शित करता है। जैसे बच्चों का एक प्रश्न था कि जानवर घर क्यों नहीं बनाते और दुर्घटना होने पर गाड़ी को आदमी की तरह चोट क्यों नहीं लगती? ऐसे असंख्य प्रश्न वो पूछते रहते हैं। यह सब हमें उनके साथ वार्तालाप का मौक़ा देते हैं व उनकी समझ, अवधारणाओं से परिचय और तर्क समझने व करने की क्षमता सभी को प्रोत्साहन दे सकते हैं। बच्चों के ज्ञान का एक छोटा-सा उदाहरण यह है : मैंने अपनी कक्षा में 'कुरकुरे', बिस्कुट, चॉकलेट आदि के रैपर्स बच्चों को दिखाए। बच्चे उन रैपर्स पर बनी आकृति को देखकर बता पा रहे थे कि कौन-सा 'मंच' चॉकलेट का रैपर है और कौन-सा 'कुरकुरे' का। इससे यह ज्ञात होता है कि उनको एक तरह से आकृति, बनावट, अक्षरों की पहचान हमारी कक्षा में आने से पहले ही हो जाती है। छोटा, बड़ा का गणितीय ज्ञान उनको पहले से ही रहता है। वे इन सबके बारे में बहुत कुछ समझते हैं एवं बहुत कुछ और समझना भी चाहते हैं।

मैंने यह भी देखा कि बच्चे नई चीज़ें करना चाहते हैं, खोजबीन कर परखना चाहते हैं। मेरे यहाँ पुस्तकालय में बहुत सारी पुस्तकें रखी हुई हैं। पुस्तकालय में पहली और दूसरी कक्षा के बच्चे आते हैं। पहली कक्षा के बच्चे बार-बार इन किताबों को उलट-पलट कर देखते हैं और कुछ बच्चे इन्हें देखते हुए अपने मन से कुछ गुनगुनाते रहते हैं, कुछ बोलते हैं। भले ही अक्षर कुछ भी लिखा हो लेकिन चित्रों के साथ उसको मिलाने की कोशिश करते रहते हैं, जो भी लिखा रहता है उसको जानने की कोशिश करते हैं। मैंने अपनी कक्षा में इस प्रकार से बहुत सारी गतिविधियाँ करवाईं और देखा कि बच्चे चित्रों पर बहुत अच्छे-से काम करने लगे।

इसी तरह बच्चों की गणितीय अवधारणाओं को भी मज़बूत करने पर काम किया जा सकता

है। उदाहरणत:, अपनी अँगुली का प्रयोग कर बच्चे अपने परिवार सहित रिश्तेदारों की संख्या भी बताते हैं यानी गणितीय अवधारणाएँ परिवेश में कहीं-न-कहीं रहती हैं और बच्चे उस गणितीय एवं संख्यात्मक ज्ञान से परिचित रहते हैं। यह संख्यात्मक और मात्रात्मक ज्ञान बच्चे हमको बताते भी हैं, लेकिन हम समझते हैं कि गणित अलग विषय है और इसको हम चित्र तथा संकेत के माध्यम से दर्शाने की कोशिश करते हैं। इस वजह से बच्चों का सीखना बाधित हो जाता है।

बुनियादी गणितीय समझ के लिए मैं बच्चों को बहुत-से खेल खिलाता हूँ, जैसे– बोलो भाई बोलो कितने, तो मैंने अगर 25 बोला तो 25 लिखते हैं, मैंने अगर 24 बोला तो 24 लिखते हैं। बच्चों को समझ होती है। सामान्यतः बच्चे 5 और 10 का जोड़ बना लेते हैं लेकिन जब हम उसी चीज़ को सवाल में देते हैं कि आपकी कक्षा में 10 लड़के हैं और 5 लड़कियाँ हैं तो बताओ कितने लड़के और लड़कियाँ हो गईं। वहाँ पर बच्चों को प्रश्न समझ में नहीं आता है और जोड़ना कठिन हो जाता है। इसलिए इस प्रकार की गतिविधियाँ करवाई जानी आवश्यक हैं जिनसे बच्चे संख्यात्मक ज्ञान सीख लेते हैं।

> खेल–खेल में बच्चों को बुनियादी साक्षरता देना मुझे बहुत ही सरल एवं सहज लगा और इसके साथ ही लिखने पर भी मैंने काम करना जारी रखा। मैंने बच्चों के लिए एक कोना रखा, गोदा–गादी का। वहाँ बच्चे अपने मन से जाकर कुछ भी कर सकते हैं, जैसे— चित्र बनाएँ, रेखा खींचें, आदि। इसमें पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों को मज़ा आता है क्योंकि हम ज़्यादातर उन्हें रनिंग श्यामपट्ट ही देते हैं।

इसी प्रक्रिया में कुछ और खेलों का उदाहरण भी दिया जा सकता है जिससे बच्चों में तर्कशक्ति का विकास होता है जैसे– चिड़िया उड़, मैना उड़, शेर उड़। इससे बच्चे ध्यान से सुनना सीखते हैं। बच्चों में भाषा सीखने की पहली शर्त सुनने की दक्षता हासिल करना है, क्योंकि अगर बच्चे सुनेंगे नहीं तो समझेंगे नहीं। इस खेल में बच्चे समझ जाते हैं कि अगर शेर उड़ कहेंगे तो शेर नहीं उड़ पाएगा, बच्चे वहाँ अपनी गतिविधि रोक देते हैं और अपनी प्रतिक्रिया देते हैं। 'हरा समन्दर गोपी चन्दर', 'बोल मेरी मछली कितना पानी', इसमें लम्बाई का पता चलता है, बच्चे पानी दिखाते हैं कि इतना पानी है। पहले बच्चे पैर के पास दिखाते हैं, फिर कमर के पास दिखाते हैं एवं फिर और ज़्यादा पानी दिखाकर डूबने का जो भाव उनमें पैदा होता है तो कहीं-न-कहीं उनको लम्बाई का या अनुपात का पता चलता है। ऐसी ही कई कविताएँ हैं और कविता एवं ये खेल बच्चों के सुनने, समझने के साथ-साथ उनको गाने, उनमें आए शब्दों को पहचानने और नए शब्दों को अपने शब्द भण्डार में शामिल करने के अवसर प्रदान करते हैं। और यह बुनियादी साक्षरता के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

खेल-खेल में बच्चों को बुनियादी साक्षरता देना मुझे बहुत ही सरल एवं सहज लगा और इसके साथ ही लिखने पर भी मैंने काम करना जारी रखा। मैंने बच्चों के लिए एक कोना रखा, गोदा-गादी का। वहाँ बच्चे अपने मन से जाकर कुछ भी कर सकते हैं, जैसे– चित्र बनाएँ, रेखा खींचें, आदि। इसमें पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों को मज़ा आता है क्योंकि हम ज़्यादातर उन्हें रनिंग श्यामपट्ट ही देते हैं। हालाँकि, वहाँ बच्चों को एकदम साफ़-सुथरे, ख़ाली ब्लैकबोर्ड पर नहीं लिखना है, उनको इसकी आज़ादी नहीं रहती है। इसलिए मैंने बच्चों को एक कोना दे दिया और उन्हें बोला कि 'आपकी जगह इतनी ही है, आपका ख़ाना इतना ही है'। बच्चों को वहाँ गोदा-गादी करने के अवसर प्रदान करने की वजह से एक तरह से उनको लिखने की स्वतंत्रता मिल जाती है। बच्चे जब स्कूल आते हैं तब हम उनको कहते हैं कि अ से अः लिखो। इस वजह से उनको परेशानी हो जाती है कि किस तरह से हमारे शिक्षक हमें आन्तरिक प्रक्रिया में धकेल रहे हैं। मैंने जब उनको लिखने

की आज़ादी दी और इस प्रक्रिया की शुरुआत की तो लिखने के प्रति कुछ बच्चों की जिज्ञासा बढ़ गई और बाद में उन्हें लिखना अच्छा लगने लगा। इसी प्रकार, हमने स्कूल में कुछ बालू रखी जिसपर बच्चे हाथों से लकीर खींचते हैं। अपने मन से कुछ लिखने की कोशिश करते हैं। वहाँ पर पैर रखकर छोटे-छोटे घरौंदे और आकृतियाँ बनाते हैं। पंजे को बालू में रखकर बताते हैं कि देखो मेरा पंजा बड़ा है या मेरा पंजा छोटा है। यह हुई बुनियादी साक्षरता और खेल-खेल में शिक्षा की बात। हमारी सरकार भी यही चाह रही है कि खेल-खेल में बच्चा किस प्रकार सीखे। खिलौनों से किस प्रकार पढ़ाई कराई जाए। मैंने इस प्रकार से काम किया।

इसी प्रकार मैंने काग़ज़ों से काम किया, जैसे– काग़ज़ों से नाव बनाना, जहाज़, कपड़े बनाना आदि। जब बच्चों ने इसे देखा तो उन्होंने भी काग़ज़ मोड़कर कुछ बनाने की कोशिश की।

किस प्रकार से आधा होगा, फिर चौथाई होगा तो बच्चों को भी अच्छा लगा और साथ ही इसमें गणितीय ज्ञान भी हुआ। एक चीज़ और बताना चाहूँगा। मैं दूसरी और तीसरी कक्षा के बच्चों से काम करवा रहा था और मैंने सबको कविता लिखने के लिए प्रेरित किया। एक बच्चे ने आसपास की चीज़ों को देखकर लिखा :

'मैंने देखा आज, आसमान में उड़ता बाज़,

मस्ती में वह उड़ रहा था, पर उसके बाद बोला कुछ ढूँढ़ रहा था'।

यहाँ पर हमने देखा कि हम समझते हैं कि एक छोटा-सा बच्चा क्या कर सकता है। कविता की दो लाइन अगर बोलने के लिए बोल दें तो वह मुश्किल हो जाता है लेकिन उसने जो लिखा और अपने आसपास देखा तो महसूस नहीं हुआ कि ये बच्चा इतना लिख सकता है। उसने देखा कि बाज़ मस्ती में उड़ रहा है लेकिन फिर बोला, कि नहीं वो कुछ ढूँढ़ रहा है। ये मुझे बहुत अच्छा लगा।

हृदयकान्त दीवान : तीन-चार चीज़ें जो आपने बहुत ही महत्त्वपूर्ण कही हैं, मैं उन्हें रेखांकित कर देता हूँ। पहली बात, बच्चों के बारे में बहुत सारी धारणाएँ हैं। वो धारणाएँ पहले तो बहुत व्यापक और स्पष्ट तौर पर थीं, जैसे– बच्चे माटी का लौंदा होते हैं, ख़ाली स्लेट होते हैं। ये धारणाएँ अभी उस तरह की तो नहीं हैं लेकिन फिर भी कहीं-न-कहीं हमारे मन में बच्चों के प्रति जो भावना है उसमें उनके ज्ञान की, समझ की, जिज्ञासा की उतनी इज़्ज़त नहीं है जितनी होनी चाहिए। आपने ये भी बात कही कि बच्चे को अगर पहल करने का मौक़ा मिले तो वे बहुत सारी ऐसी चीज़ें करते हैं जो हम लोगों को लगता है कि वो नहीं कर सकते हैं, चाहे कविता बनाना हो या अपने से छोटे बच्चों के लिए खेल बनाना। कक्षा में भी अगर कोई ऐसी जगह हो जहाँ बच्चे आकर अपने विचार गोदा-गोदी के रूप में शुरू कर सकें तो उससे उनका लिखने के प्रति आत्मविश्वास और क्षमता बढ़ती है। आपने बहुत सारे उदाहरण दिए जो शिक्षक कक्षा में बच्चों के साथ कर सकते हैं, उसमें गणित के भी उदाहरण थे और भाषा के भी।

- संवाद का यह पहला भाग है और इसमें बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें रखी गई हैं।
- पाठकों से आग्रह है कि आप इस विषय पर हमें छोटी-छोटी टिप्पणी या अतिरिक्त बिन्दु हमें भेजें। इनमें से प्रासंगिक व सार्थक बिन्दुओं को हम अगले अंक में शामिल करेंगे।